ओ३म्

योगदर्शन सूत्रमाला

समाधिपाद

1. **अथ योगानुशासनम्। सूत्रार्थ—** योग के शास्त्र को आरम्भ किया जाता है ।
2. **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। सूत्रार्थ—** चित्त की वृत्तियों का निरुद्ध हो जाना योग है।
3. **तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। सूत्रार्थ—** चित्त की वृत्तियों के रुक जाने पर आत्मा अपने स्वरूप में ठहर जाता है।
4. **वृत्तिसारूप्यमितरत्र। सूत्रार्थ—** चित्तवृत्तिनिरोध से भिन्न अवस्था में आत्मा की वृत्तियों के साथ एकरूपता बनी रहती है।
5. **वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः। सूत्रार्थ—** चित्त में उठने वाली वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं, जो कि क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट होती हैं।
6. **प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः। सूत्रार्थ—** मन में उठने वाली वे पाँच प्रकार की वृत्तियाँ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा व स्मृति हैं।
7. **प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि। सूत्रार्थ—** 'प्रमाण' नामक वृत्ति प्रत्यक्ष, अनुमान व आगम नामक भेदात्मक स्वरूप वाली होती है।
8. **विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्। सूत्रार्थ—** विपर्यय मिथ्याज्ञान है क्योंकि वह पदार्थ के स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं होता है।
9. **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः। सूत्रार्थ—** शब्द से उत्पन्न ज्ञान का अनुगमन करनी वाली ऐसी चित्तवृत्ति जो विषयगत वस्तु के अस्तित्व से रहित होती है, 'विकल्प वृत्ति' कहलाती है।
10. **अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा। सूत्रार्थ—** जाग्रत और स्वप्न ज्ञान के अभाव की प्रतीति का आश्रय करने वाली चित्तवृत्ति 'निद्रा' कहलाती है।
11. **अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः। सूत्रार्थ—** 'पूर्व अनुभव किये गये विषयों का पुनः स्मरण होना' इस स्वरूप वाली चित्तवृत्ति 'स्मृति' कहलाती है।
12. **अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। सूत्रार्थ—** अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त में उत्पन्न होने वाली वृत्तियों का निरोध होता है।
13. **तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः। सूत्रार्थ—** उन अभ्यास और वैराग्य में से चित्त को वृत्तिरूपी तरङ्ग से रहित प्रशान्त अवस्था में बनाये रखने के लिए जो प्रयास किया जाता है, वह 'अभ्यास' कहलाता है।
14. **स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः। सूत्रार्थ—** पूर्वसूत्र में बताया गया चित्त को निस्तरङ्ग वृत्तिरहित अवस्था में बनाये रखने का अभ्यास तो दीर्घकाल तक, लगातार, श्रद्धा, उत्साह और निष्ठापूर्वक अनुष्ठान किया जाने पर दृढ अवस्था वाला हो पाता है।
15. **दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्। सूत्रार्थ—** नेत्र-श्रोत्र आदि इन्द्रियों से साक्षात् किये गये और वेद आदि शास्त्रों तथा गुरु-आचार्य आदि के माध्यम से सुने व समझे गये विषयों में तृष्णारहित चित्त की जो वशीकारमय स्वाधीनात्मक अनुभूति है, वह 'वैराग्य' कहलाती है।
16. **तीव्रसंवेगानामासन्नः। सूत्रार्थ—** तीव्र पुरुषार्थ वालों को समाधि की प्राप्ति शीघ्र होती है।
17. **ईश्वरप्रणिधानाद्वा। सूत्रार्थ—** ईश्वर-प्रणिधान मात्र से भी असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति हो जाती है।
18. **क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। सूत्रार्थ—** क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से अछूता चेतनतत्त्वविशेष ईश्वर है।
19. **तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् । सूत्रार्थ—** उस ईश्वर में घटत-बढ़त से रहित सर्वज्ञता का मूल विद्यमान है।
20. **स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् । सूत्रार्थ—** वह ईश्वर नामक चेतनतत्वविशेष पहले हो चुके आत्मज्ञानियों का भी गुरु है, काल के द्वारा सीमित न होने से।
21. **तस्य वाचकः प्रणवः। सूत्रार्थ—** उस ईश्वर नामक चेतनतत्त्वविशेष के अस्तित्व का बोध कराने वाला शब्द ध्वन्यात्मक 'ओ३म्' शब्द है।
22. **तज्जपस्तदर्थभावनम्। सूत्रार्थ—** उस ईश्वरबोधक 'ओ३म्' शब्द के पुनः-पुनः उच्चारणपूर्वक उसके अर्थ की भावना करनी चाहिये
23. **ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। सूत्रार्थ—** जप के करने से साधक को स्व-आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है तथा समाधि-विघ्नों का नाश भी हो जाता है।
24. **व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्त्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः। सूत्रार्थ—** व्याधि,

स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व ये चित्त के विक्षेप हैं तथा समाधि की प्राप्ति में बाधारूप हैं।

25. **दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः। सूत्रार्थ—** दुःख, हताशा, शरीराङ्गों में सूक्ष्म कंपकपी, असहज श्वास-प्रश्वास विक्षेप सहभागी हैं अर्थात् ये सब पूर्वोक्त चित्तविक्षेपों के साथ-साथ पैदा हो जाते हैं।

26. **तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः। सूत्रार्थ—** उन दुःख आदि उपविक्षेपों के निराकरण के लिये एकतत्त्व का अभ्यास करना चाहिये।

27. **मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। सूत्रार्थ—** सुखी व्यक्तियों के प्रति मैत्री भाव, दुःखी व्यक्तियों के प्रति करुणा भाव, पुण्यात्मा व्यक्तियों के प्रति प्रसन्नता का भाव तथा पापी व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा भाव रखने से साधक का चित्त शान्त व निर्मल हो जाता है।

28. **प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य। सूत्रार्थ—** श्वास के बार-बार बाहर फेंकने व रोकने की प्रक्रिया के द्वारा भी चित्त शान्त व निर्मल बन जाता है।

29. **निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः। सूत्रार्थ—** निर्विचार-समापत्ति में वैशारद्य-अवस्था उत्पन्न हो जाने पर, योगी को अध्यात्मप्रसाद प्राप्त होता है।

30. **ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा। सूत्रार्थ—** उस पूर्वसूत्रोक्त दशा में 'ऋतम्भरा' नाम वाली बुद्धि होती है।

31. **तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी। सूत्रार्थ—** उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से उत्पन्न हुआ संस्कार अन्य संस्कारों का रोकने वाला होता है।

32. **तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः। सूत्रार्थ—** उस ऋतम्भराप्रज्ञाजनित संस्कार के भी रोक दिये जाने पर, सब चित्तवृत्तियाँ निरुद्ध हो जाने से निर्बीज समाधि घटित होती है।

साधनापाद

1. **तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। सूत्रार्थ—** तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये तीनों सांघातिक रूप से 'क्रियायोग' कहलाते हैं।

2. **समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च। सूत्रार्थ—** क्रियायोग का अभ्यास समाधि की अवस्था को प्राप्त करने के लिये तथा क्लेशों को सूक्ष्म करने के लिए किया जाता है।

3. **अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः। सूत्रार्थ—** अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं।

4. **अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्। सूत्रार्थ—** अविद्या क्लेश, प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्थाओं वाले अगले अस्मिता, राग आदि क्लेशों का उत्पत्तिस्थान है।

5. **अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या। सूत्रार्थ—** अनित्य पदार्थों में नित्यता का, अपवित्र पदार्थों में पवित्रता का, दुःखोत्पादक पदार्थों में सुखमयता का तथा अचेतन पदार्थों में चेतन-सदृश अहसास का होना अविद्या कहलाती है।

6. **दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता। सूत्रार्थ—** आत्मा और चित्त की एकात्मता-सी हो जाना 'अस्मिता' क्लेश कहलाता है।

7. **सुखानुशयी रागः। सूत्रार्थ—** सुख का अनुसरण करने वाला भाव राग नामक क्लेश है।

8. **दुःखानुशयी द्वेषः। सूत्रार्थ—** दुःख का अनुसरण करने वाला भाव 'द्वेष' नामक क्लेश है।

9. **स्वरसवाही विदुषोऽपि तथाऽऽरूढोऽभिनिवेशः। सूत्रार्थ—** नैसर्गिक रूप से प्रवाहित होने वाला मरणत्रासरूपी भाव, जो कि विद्वान् के अन्तःकरण में भी उसी प्रकार आरूढ़ है, जिस प्रकार अविद्वान् के अन्तःकरण में, 'अभिनिवेश' क्लेश कहलाता है।

10. **ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः। सूत्रार्थ—** वे क्लेश, जो कि सूक्ष्म हो गये हों, प्रतिप्रसव प्रक्रिया के द्वारा सर्वथा नष्ट किये जा सकते हैं।

11. **ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः। सूत्रार्थ—** क्रियायोग के निरन्तर अभ्यास के द्वारा तनू हो चुके क्लेशों की स्थूल-वृत्तियाँ ध्यान के अभ्यास के द्वारा हटानी चाहिये।

12. **क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः। सूत्रार्थ—** अविद्या आदि पञ्च क्लेश मूल वाले हैं कर्मों के संस्कार, जिनका फल दृश्यमान इस वर्तमान जन्म में और अदृश्यमान भावी जन्मों में भोगा जाता है।

13. **सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। सूत्रार्थ—** अविद्या आदि क्लेशों रूपी मूलकारण के बने रहने पर ही, पूर्वसूत्र में वर्णित कर्मसंस्कारों का विपाक जाति, आयु और भोग्य पदार्थों की प्राप्ति के रूप में होता है।

14. **ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।** विपाकरूप में प्राप्त वे जाति, आयु और भोग्य पदार्थ सुख तथा दुख के रूप में फल देते हैं, पुण्य कर्मों और पाप कर्मों से उत्पन्न होने से।

15. **परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः। सूत्रार्थ—** परिणामदुःख, तापदुःख, और संस्कारदुःखों से युक्त होने से तथा सत्त्व आदि गुणों की वृत्तियों का परस्पर विरोध होने से विवेकी पुरुष के लिये सभी सुख भी दुःखरूप ही होते हैं।

16. **प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्। सूत्रार्थ—** विशेष, अविशेष, लिङ्गमात्र और अलिङ्ग ये सत्त्वादि गुणों की पदार्थों के रूप में परिणमित अवस्थाएँ हैं।

17. **द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः। सूत्रार्थ—** द्रष्टारूप आत्मा केवल ज्ञानमात्र है, जो कि निर्विकार होते हुए भी वृत्तियों के अनुरूप देखने वाला है।

18. **तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा। सूत्रार्थ—** उस द्रष्टारूप आत्मा के भोग व अपवर्ग को सिद्ध करने के लिए ही दृश्यरूप जगत् का अस्तित्व है।

19. **कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात। सूत्रार्थ—** कृतार्थ आत्मा के लिये नष्ट-सा हुआ भी यह दृश्यरूप जगत् नष्ट नहीं होता क्योंकि उस कृतार्थ पुरुष से भिन्न अन्य पुरुषों के लिये अपवर्ग की असिद्धिरूप साधारण स्थिति बनी रहती है।

20. **योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। सूत्रार्थ—** मनसा-वाचा-कर्मणा योग के अङ्गों का पालन करने से अविद्या-अस्मिता आदि पञ्च क्लेशरूप अशुद्धि का नाश होते जाने से, ज्ञान का प्रकाश पूर्ण विवेकख्याति की अवस्था पर्यन्त बढ़ता जाता है।

21. **यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। शब्दार्थ—** [यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयः] यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये [अष्टौ] आठ [अङ्गानि] अङ्ग हैं, योग के।

22. **अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। सूत्रार्थ—** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को 'यम' कहते हैं।

23. **जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् सूत्रार्थ—** अहिंसा, सत्य आदि पाँचों यम जाति, देश, काल और नियमविशेष से अबाधित, सभी अवस्थाओं में पालन किये जाने वाले महाव्रतरूप हैं।

24. **शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। सूत्रार्थ—** शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान 'नियम' कहलाते हैं।

25. **वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्। सूत्रार्थ—** वितर्कों के द्वारा यम-नियमों के पालन में बाधा पड़ने पर, प्रतिपक्ष का चिन्तन करना चाहिये।

26. **वितर्का हिंसादयः कृतकारितानमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वक मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्। सूत्रार्थ—** हिंसा आदि वितर्क कहलाते हैं, जो कि स्वयमेव किये गये हों या अन्य से कराये गये या अनुमोदन किये गये हों। ये लोभ, क्रोध व मोहवश किये जाते हैं तथा मृदु, मध्य और तीव्रस्तर के होते हैं। ये हिंसा आदि वितर्क जीवात्मा को अनन्त दुःख और अनन्त अज्ञान के रूप में फल देने वाले हैं, इस प्रकार चिन्तन-मनन करना प्रतिपक्षभावना कहलाता है।

27. **अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। सूत्रार्थ—** अहिंसा के भाव के चित्त में पूरी तरह से प्रतिष्ठित हो जाने पर, उस योगी के सानिध्य में प्राणियों का परस्पर का वैरभाव छूट जाता है।

28. **सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम। सूत्रार्थ—** सत्य के भाव के चित्त में पूरी तरह से प्रतिष्ठित हो जाने पर, योगी की वाणी में क्रिया के फल का आश्रय हो जाता है अर्थात् योगी की वाणी से जो भी बात निकल जाती है, वह सत्य होकर रहती है।

29. **अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्। सूत्रार्थ—** अस्तेय भाव के चित्त में पूरी तरह से प्रतिष्ठित हो जाने पर योगी को समस्त उत्तम पदार्थों की प्राप्ति होने लगती है।

30. **ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः। सूत्रार्थ—** ब्रह्मचर्य-भाव के चित्त में पूरी तरह से प्रतिष्ठित हो जाने पर, साधक को चुम्बकीय-आकर्षण से युक्त तेजस्विता की प्राप्ति होती है।

31. **अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः। सूत्रार्थ—** अपरिग्रह के भाव के चित्त में पूरी तरह से स्थिर हो जाने पर, साधक को अपने जन्म सम्बन्धी क्यों...? कहाँ से...? इत्यादि प्रश्नों का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

32. **शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः। सूत्रार्थ—** शुद्धिकरण का मनसा, वाचा, कर्मणा पालन करने से स्व-शरीरावयवों के प्रति सम्मोहाभाव तथा अन्य व्यक्तियों के साथ शारीरिक सम्पर्क बनाने की आकांक्षा का अभाव घटित होता है।

33. **सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च। सूत्रार्थ—** शुद्धिकरण का पालन करने से साधक के चित्त में राग-द्वेष का अभाव, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों पर वशता तथा आत्मदर्शन की योग्यता भी प्राप्त होती है।

34. **सन्तोषदनुत्तमसुखलाभः। सूत्रार्थ—** सन्तोष के भाव से सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है।

35. **कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः। सूत्रार्थ—** मानसिक-वाचिक-कायिक तप के अनुष्ठान के द्वारा अशुद्धि का क्षय हो जाने से, साधक को शरीर

और इन्द्रियों से सम्बन्धी विभिन्न आन्तरिक क्षमताओं की प्राप्ति होने लगती है।

36. **स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः। सूत्रार्थ—** प्रणव आदि पवित्र शब्दों का जप तथा मोक्षशास्त्रों के अध्ययनरूप स्वाध्याय के निरन्तर करने से इष्ट दिव्य आत्माओं के साथ सम्पर्क होने लगता है।

37. **समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात। सूत्रार्थ—** मन, वाणी तथा शरीर की समस्त क्रियाओं को प्रभु के प्रति सविनय समर्पित कर देने रूप ईश्वर-प्रणिधान का निरन्तर अभ्यास करने से साधक को समाधि-अवस्था की प्राप्ति होने लगती है।

38. **स्थिरसुखमासनम्। सूत्रार्थ—** शरीर की जो स्थिति स्थिरता व सुखमयता से युक्त हो, वह आसन कहलाती है।

39. **प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्। सूत्रार्थ—** प्रयत्न की शिथिलता और असीम आकाश या ईश्वर में ध्यान लगाने से साधक का आसन स्थिर व सुखपूर्ण हो जाता है।

40. **ततो द्वन्द्वानभिघातः। सूत्रार्थ—** आसन के सिद्ध हो जाने पर, साधक के शरीर व मन पर सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास व संकल्प-विकल्प रूप द्वन्द्वों का अभिघात नहीं होता।

41. **तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। सूत्रार्थ—** आसन के स्थिर हो जाने पर श्वास लेने व श्वास को छोड़ने की स्वाभाविक गति को विच्छिन्न कर देना प्राणायाम कहलाता है।

42. **बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः। सूत्रार्थ—** बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृति, स्तम्भवृत्ति इन भेदात्मक नाम वाला प्राणायाम, देश, काल और संख्या के द्वारा नापा गया दीर्घ और सूक्ष्म होता जाता है।

43. **बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः। सूत्रार्थ—** चौथा प्राणायाम बाह्य और आभ्यन्तर विषयक प्राण के आक्षेप अर्थात् आलोचन स्वरूप वाला होता है।

44. **ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। सूत्रार्थ—** प्राणायाम के नियमित अभ्यास से प्रकाशावरण कमजोर पड़ने लगता है।

45. **धारणासु च योग्यता मनसः। सूत्रार्थ—** धारणाओं का अनुष्ठान कर सकने की मानसिक-सक्षमता की प्राप्ति भी होती है।

46. **स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। सूत्रार्थ—** इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों के साथ सम्पर्क न रहने पर, उनका चित्त के सदृश निरुद्ध-सा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है।

47. **ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्। सूत्रार्थ—** प्रत्याहार के घटित हो जाने पर साधक को सहज ही इन्द्रियों पर परम-वशता प्राप्त हो जाती है।

विभूतिपाद

1. **देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। सूत्रार्थ—** चित्त को शरीरस्थ या शरीर से बाह्य किसी स्थानविशेष पर रोक देना 'धारणा' कहलाता है।

2. **तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। सूत्रार्थ—** जिस स्थान पर चित्त को रोका गया है, उस स्थानविशेष में बोध की सततता बनी रहना 'ध्यान' कहलाती है।

3. **तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। सूत्रार्थ—** वह ध्यान ही जब ध्येयवस्तुमात्रभासात्मक हो जाता है तथा ध्याता स्वयं के होने की प्रतीति से रहित-सा हो जाता है, 'समाधि' कहलाता है।

4. **त्रयमेकत्र संयमः। सूत्रार्थ—** एक वस्तुविषयक धारणा-ध्यान-समाधि संयुक्त रूप से 'संयम' कहलाते हैं।

5. **तज्जयात् प्रज्ञालोकः। सूत्रार्थ—** उस संयम के सिद्ध हो जाने पर योगी को प्रकृष्ट-ज्ञानालोक उपलब्ध होता है।

कैवल्यपाद

1. **जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः। सूत्रार्थ—** सिद्धियाँ जन्म, ओषधि, मन्त्र, तप और समाधि के माध्यम से उत्पन्न होती हैं।

2. **पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति। सूत्रार्थ—** पुरुष के प्रयोजन से विरत हुए सत्व-रज-तम गुणों का अपने कारण मूल प्रकृति में लीन हो जाना 'आत्मा की कैवल्यावस्था' है अथवा ऐसा भी समझ सकते हैं कि अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित चेतनशक्ति की अवस्था 'कैवल्यावस्था' है।